शोधामृत
(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अंतर्राष्ट्रीय सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-5.375
Vol.-3; issue-4 (Oct.-Dec.) 2026
Page No- 41-49
©2026 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Author's :
Dr. Shradha Kumari
P.G. Head Department of Philosophy,
Nalanda College, Biharsharif.

Corresponding Author :
Dr. Shradha Kumari
P.G. Head Department of Philosophy,
Nalanda College, Biharsharif.

अरस्तू के सद्गुण नैतिकता सिद्धांत का आलोचनात्मक अध्ययन

सारांश (Abstract) : पाश्चात्य नैतिक दर्शन के इतिहास में अरस्तू का सद्गुण नैतिकता सिद्धांत एक महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक दार्शनिक योगदान है। अरस्तू ने नैतिकता को केवल कर्तव्यों, नियमों अथवा कर्मों के परिणामों तक सीमित न रखकर मनुष्य के चरित्र, आचरण, विवेक और जीवन के परम उद्देश्य से संबंधित व्यापक मानवीय अनुशासन के रूप में प्रस्तुत किया। उनके अनुसार नैतिक जीवन का वास्तविक उद्देश्य सुख प्राप्त करना है, लेकिन सुख का अर्थ इन्द्रियजन्य आनंद अथवा क्षणिक संतुष्टि नहीं है। वास्तविक सुख मनुष्य की विशिष्ट प्रकृति अर्थात् विवेकशीलता के अनुरूप सद्गुणपूर्ण क्रियाशीलता में निहित है। अरस्तू इस सर्वोच्च मानवीय अवस्था को 'यूडेमोनिया' (Eudaimonia) कहते हैं, जिसका अर्थ केवल सुख नहीं, बल्कि समृद्ध, सार्थक एवं उत्कृष्ट मानवीय जीवन है।

अरस्तू की नैतिक विचारधारा का प्रमुख आधार सद्गुण (Virtue), स्वर्णिम मध्य मार्ग (Golden Mean), व्यावहारिक बुद्धि (Phronesis), स्वैच्छिक कर्म (Voluntary Action), नैतिक उत्तरदायित्व तथा चरित्र-निर्माण है। उनका मानना है कि मनुष्य जन्म से नैतिक नहीं होता, बल्कि निरंतर अभ्यास, उचित आदतों और विवेकपूर्ण निर्णयों के माध्यम से सद्गुणों का विकास करता है। इस दृष्टि से नैतिकता किसी बाहरी नियम का पालन मात्र नहीं, बल्कि मनुष्य के व्यक्तित्व और चरित्र का आंतरिक परिष्कार है।

प्रस्तुत शोधपरक लेख का उद्देश्य अरस्तू के सद्गुण नैतिकता सिद्धांत का दार्शनिक विश्लेषण करना, उसके मूल तत्त्वों की विवेचना करना तथा उसकी सीमाओं का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना है। इसके अंतर्गत प्लेटो के नैतिक दर्शन के साथ तुलनात्मक संदर्भ, यूडेमोनिया की अवधारणा, नैतिक एवं बौद्धिक सद्गुणों का वर्गीकरण, स्वर्णिम मध्य मार्ग का सिद्धांत तथा व्यावहारिक बुद्धि की भूमिका का विश्लेषण किया गया है। साथ ही, आधुनिक समाज में नैतिक संकट, शिक्षा, सामाजिक उत्तरदायित्व, पर्यावरणीय चेतना और मानवीय संबंधों के संदर्भ में इसकी प्रासंगिकता का परीक्षण किया गया है। अध्ययन का निष्कर्ष है कि अरस्तू की सद्गुण नैतिकता आज भी मनुष्य के नैतिक व्यक्तित्व के निर्माण तथा एक विवेकपूर्ण और मानवीय समाज की स्थापना के लिए महत्त्वपूर्ण दार्शनिक आधार प्रदान करती है, यद्यपि इसमें कुछ ऐतिहासिक, सामाजिक और सैद्धांतिक सीमाएँ भी विद्यमान हैं।

प्रमुख शब्द : अरस्तू, सद्गुण नैतिकता, यूडेमोनिया, स्वर्णिम मध्य मार्ग, व्यावहारिक बुद्धि, नैतिकता, चरित्र-निर्माण, नैतिक उत्तरदायित्व।

1. प्रस्तावना : नैतिक दर्शन मानव जीवन के उन मूलभूत प्रश्नों का अध्ययन करता है, जिनका संबंध उचित-अनुचित, शुभ-अशुभ, न्याय-अन्याय तथा मानवीय आचरण के मूल्यांकन से है। मनुष्य केवल जैविक अस्तित्व वाला प्राणी नहीं है, बल्कि वह विवेक, संवेदना, इच्छा, संकल्प और सामाजिक संबंधों से निर्मित एक नैतिक प्राणी भी है। इसलिए उसके सामने सदैव यह प्रश्न उपस्थित रहता है कि उसे किस प्रकार जीवन व्यतीत करना चाहिए, कौन-सा आचरण उचित है और एक आदर्श मानवीय जीवन की स्थापना किन मूल्यों के आधार पर संभव है।

पाश्चात्य दर्शन में सुकरात, प्लेटो और अरस्तू ने नैतिक चिंतन को एक व्यवस्थित दार्शनिक आधार प्रदान किया। सुकरात ने ज्ञान और सदाचार के संबंध पर बल दिया, प्लेटो ने परम शुभ के विचार को नैतिकता का आधार बनाया तथा अरस्तू ने नैतिकता को मनुष्य के व्यावहारिक जीवन, चरित्र और जीवन के परम उद्देश्य से जोड़कर एक स्वतंत्र एवं व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया।

अरस्तू (384–322 ईसा पूर्व) प्राचीन यूनानी दर्शन के महान विचारक थे। उनका नैतिक दर्शन मुख्यतः उनकी प्रसिद्ध रचना Nicomachean Ethics में प्रस्तुत हुआ है। इस ग्रंथ

में उन्होंने मनुष्य के जीवन के सर्वोच्च लक्ष्य, सद्गुणों की प्रकृति, नैतिक निर्णय, इच्छाशक्ति, मैत्री, न्याय और बौद्धिक जीवन का विस्तृत विवेचन किया है।

अरस्तू के नैतिक दर्शन की केंद्रीय मान्यता यह है कि प्रत्येक मानवीय क्रिया किसी न किसी उद्देश्य की ओर उन्मुख होती है। मनुष्य जो भी कार्य करता है, उसके पीछे कोई न कोई प्रयोजन, इच्छा अथवा लक्ष्य होता है। किंतु सभी लक्ष्य समान महत्त्व के नहीं होते। कुछ लक्ष्य अन्य लक्ष्यों की प्राप्ति के साधन होते हैं, जबकि कुछ अपने आप में वांछनीय होते हैं। इस प्रकार उद्देश्यों की एक श्रेणी निर्मित होती है। इस श्रेणी का सर्वोच्च उद्देश्य वह है, जिसकी प्राप्ति अन्य किसी उद्देश्य के लिए नहीं, बल्कि स्वयं उसी के लिए की जाती है। अरस्तू इसी सर्वोच्च उद्देश्य को यूडेमोनिया कहते हैं।

यहाँ ध्यान देने योग्य है कि अरस्तू की नैतिकता का उद्देश्य केवल यह निर्धारित करना नहीं है कि कौन-सा कर्म सही है और कौन-सा गलत। उनका वास्तविक प्रश्न इससे अधिक व्यापक है—मनुष्य को किस प्रकार का व्यक्ति बनना चाहिए, जिससे वह एक उत्कृष्ट, सार्थक और पूर्ण जीवन व्यतीत कर सके? इसीलिए अरस्तू का नैतिक दर्शन चरित्र-केंद्रित नैतिकता के रूप में विकसित होता है।

आधुनिक नैतिक दर्शन में सामान्यतः तीन प्रमुख दृष्टिकोणों की चर्चा की जाती है—कर्तव्यवादी नैतिकता, उपयोगितावादी नैतिकता और सद्गुण नैतिकता। कर्तव्यवादी दृष्टिकोण नैतिक नियमों और कर्तव्यों पर बल देता है, उपयोगितावाद कर्मों के परिणामों और अधिकतम सुख पर ध्यान केंद्रित करता है, जबकि सद्गुण नैतिकता मनुष्य के चरित्र, नैतिक प्रवृत्तियों और विवेकपूर्ण जीवन को प्राथमिकता देती है।

इस दृष्टि से अरस्तू का सद्गुण नैतिकता सिद्धांत नैतिकता की एक ऐसी अवधारणा प्रस्तुत करता है, जिसमें नैतिक जीवन का मूल्यांकन केवल बाहरी व्यवहार से नहीं, बल्कि व्यक्ति के आंतरिक चरित्र और उसके जीवन की समग्र दिशा से किया जाता है।

2. अरस्तू के नैतिक दर्शन की दार्शनिक पृष्ठभूमि : अरस्तू के सद्गुण नैतिकता सिद्धांत को समझने के लिए प्राचीन यूनानी दर्शन की नैतिक परंपरा को समझना आवश्यक है। अरस्तू से पूर्व सुकरात और प्लेटो ने नैतिकता के विभिन्न पक्षों का विश्लेषण किया था।

सुकरात के अनुसार सद्गुण का संबंध ज्ञान से है। उनका मानना था कि कोई भी व्यक्ति जान-बूझकर बुराई नहीं करता। यदि मनुष्य को वास्तविक शुभ का ज्ञान हो जाए, तो वह स्वाभाविक रूप से शुभ कर्म करेगा। इस प्रकार सुकरात ने नैतिकता के बौद्धिक पक्ष को प्रमुखता प्रदान की।

प्लेटो ने नैतिकता को आत्मा के संगठन और परम शुभ के ज्ञान से संबंधित किया। उनके अनुसार मानव आत्मा के तीन भाग हैं—बुद्धि, उत्साह और वासना। न्यायपूर्ण जीवन वही है, जिसमें बुद्धि अन्य दोनों भागों का उचित निर्देशन करती है। प्लेटो के लिए न्याय आत्मा के विभिन्न तत्त्वों के बीच सामंजस्य की अवस्था है।

अरस्तू ने इन दोनों विचारकों से प्रभावित होते हुए भी नैतिकता के संबंध में अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने सुकरात की इस धारणा को स्वीकार नहीं किया कि केवल ज्ञान ही सद्गुण के लिए पर्याप्त है। अरस्तू के अनुसार व्यक्ति को सही और गलत का ज्ञान हो सकता है, फिर भी वह अपनी इच्छाओं, आवेगों और कमजोरियों के कारण गलत आचरण कर सकता है।

इसी प्रकार अरस्तू ने प्लेटो के उस विचार की भी आलोचना की, जिसमें शुभ को एक पृथक एवं सार्वभौमिक सत्ता माना गया था। अरस्तू के अनुसार शुभ का वास्तविक अध्ययन मानवीय जीवन और व्यवहार के संदर्भ में किया जाना चाहिए। नैतिकता का संबंध किसी अमूर्त आदर्श के चिंतन मात्र से नहीं, बल्कि वास्तविक जीवन में विवेकपूर्ण और सद्गुणपूर्ण कर्म करने से है।

इस प्रकार अरस्तू ने नैतिक दर्शन को अनुभव, व्यवहार, चरित्र और मानवीय उद्देश्य के आधार पर विकसित किया। उनका दर्शन आदर्शवाद और व्यावहारिकता के बीच एक महत्त्वपूर्ण समन्वय प्रस्तुत करता है।

3. यूडेमोनिया : मानवीय जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य : अरस्तू के सद्गुण नैतिकता सिद्धांत का सबसे महत्त्वपूर्ण आधार यूडेमोनिया (Eudaimonia) की अवधारणा है। सामान्यतः इसका अनुवाद सुख, प्रसन्नता या परम कल्याण किया जाता है, लेकिन इसका अर्थ केवल मानसिक आनंद अथवा इन्द्रियजन्य संतुष्टि नहीं है।

अरस्तू के अनुसार प्रत्येक कला, प्रत्येक अनुसंधान, प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक चयन किसी न किसी शुभ की प्राप्ति के लिए होता है। यदि मानवीय जीवन के सभी उद्देश्यों का विश्लेषण किया जाए, तो यह स्पष्ट होता है कि मनुष्य अंततः ऐसे सर्वोच्च उद्देश्य की तलाश करता है, जो अपने आप में पूर्ण और अंतिम हो।

अरस्तू इस सर्वोच्च उद्देश्य को यूडेमोनिया कहते हैं।

3.1 यूडेमोनिया का अर्थ : यूडेमोनिया का वास्तविक अर्थ है—एक ऐसा जीवन जिसमें मनुष्य अपनी क्षमताओं का सर्वोत्तम विकास करते हुए उत्कृष्टता के साथ जीवन व्यतीत करे। यह केवल किसी क्षण में प्रसन्न अनुभव करना नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन की गुणवत्ता से संबंधित है।

उदाहरण के लिए, किसी व्यक्ति को धन प्राप्त होने से क्षणिक सुख मिल सकता है, किसी अन्य व्यक्ति को प्रतिष्ठा मिलने से संतोष प्राप्त हो सकता है और किसी तीसरे व्यक्ति को इन्द्रियजन्य आनंद से प्रसन्नता मिल सकती है। किंतु अरस्तू के अनुसार इनमें से कोई भी अपने आप में मानव जीवन का सर्वोच्च उद्देश्य नहीं हो सकता, क्योंकि ये सभी किसी न किसी बाहरी परिस्थिति पर निर्भर हैं।

वास्तविक सुख वह है, जिसमें मनुष्य अपनी विशिष्ट मानवीय प्रकृति के अनुरूप जीवन व्यतीत करता है।

3.2 मानव का विशिष्ट कार्य (Function Argument) : यूडेमोनिया की व्याख्या करते हुए अरस्तू ने मानव के विशिष्ट कार्य का तर्क प्रस्तुत किया, जिसे Function Argument कहा जाता है।

अरस्तू के अनुसार किसी वस्तु की उत्कृष्टता को समझने के लिए उसके विशिष्ट कार्य को समझना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, आँख का कार्य देखना है और आँख की उत्कृष्टता उसके ठीक प्रकार से देखने में है। इसी प्रकार मानव जीवन की उत्कृष्टता को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि मनुष्य का विशिष्ट कार्य क्या है।

मनुष्य में पोषण और संवेदना की क्षमताएँ अन्य जीवों में भी पाई जाती हैं। किंतु विवेकशीलता मनुष्य की विशिष्ट विशेषता है। इसलिए मनुष्य का विशिष्ट कार्य विवेक के अनुरूप क्रियाशील होना है।

अरस्तू के अनुसार मानव का परम सुख उसकी आत्मा की ऐसी क्रियाशीलता में निहित है, जो सद्गुण के अनुरूप हो और संपूर्ण जीवन में निरंतर बनी रहे।

इस प्रकार यूडेमोनिया के तीन महत्त्वपूर्ण पक्ष हैं—

यह आत्मा की क्रियाशीलता से संबंधित है।

यह सद्गुण के अनुरूप जीवन से उत्पन्न होती है।

इसकी प्राप्ति किसी एक क्षण या कर्म से नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन के आधार पर होती है।

3.3 सुख और सद्गुण का संबंध : अरस्तू के अनुसार सद्गुणपूर्ण जीवन और सुख के बीच गहरा संबंध है। वास्तविक सुख बाहरी साधनों के संचय से प्राप्त नहीं होता, बल्कि व्यक्ति के चरित्र और विवेकपूर्ण गतिविधियों से उत्पन्न होता है।

यहाँ अरस्तू सुख को नैतिकता से अलग नहीं करते। उनके अनुसार नैतिक जीवन स्वयं सुखी जीवन का आधार है। जो व्यक्ति न्यायपूर्ण, साहसी, संयमी और विवेकशील है, वह अपने जीवन में वास्तविक उत्कृष्टता प्राप्त करता है।

हालाँकि अरस्तू यह भी स्वीकार करते हैं कि सुखी जीवन के लिए कुछ बाहरी साधनों की आवश्यकता होती है। स्वास्थ्य, मित्रता, पर्याप्त भौतिक संसाधन और सामाजिक परिस्थितियाँ व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती हैं। इस प्रकार वे पूर्णतः आत्मनिर्भर अथवा बाहरी परिस्थितियों से असंबद्ध सुख की धारणा स्वीकार नहीं करते।

4. सद्गुण की अवधारणा : अरस्तू के नैतिक दर्शन में सद्गुण (Virtue) केंद्रीय स्थान रखता है। सद्गुण से आशय व्यक्ति के चरित्र में विद्यमान ऐसी स्थायी नैतिक प्रवृत्ति से है, जिसके कारण वह उचित परिस्थितियों में उचित प्रकार से आचरण करने में सक्षम होता है।

अरस्तू ने सद्गुण को केवल किसी एक अच्छे कार्य के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसे व्यक्ति के चरित्र का स्थायी गुण माना है।

उदाहरण के लिए, यदि कोई व्यक्ति किसी विशेष अवसर पर साहस दिखाता है, तो केवल उस एक कार्य के आधार पर उसे साहसी नहीं कहा जा सकता। वास्तविक साहस तब माना जाएगा, जब साहस उसके चरित्र का स्थायी अंग बन जाए और वह भय तथा संकट की परिस्थितियों में विवेकपूर्ण निर्णय लेने में सक्षम हो।

इस प्रकार सद्गुण केवल बाहरी आचरण नहीं, बल्कि व्यक्ति की आंतरिक नैतिक संरचना है।

4.1 सद्गुण और चरित्र : अरस्तू के अनुसार नैतिकता का वास्तविक आधार चरित्र है। व्यक्ति के कर्म उसके चरित्र से उत्पन्न होते हैं और बार-बार किए गए कर्म उसके चरित्र को निर्मित करते हैं।

इस प्रकार चरित्र और कर्म के बीच पारस्परिक संबंध है। व्यक्ति अपनी आदतों से चरित्र विकसित करता है और विकसित चरित्र उसके भविष्य के आचरण को प्रभावित करता है।

अरस्तू के अनुसार मनुष्य जन्म से न्यायपूर्ण, साहसी या संयमी नहीं होता। वह इन गुणों को अभ्यास और प्रशिक्षण के माध्यम से अर्जित करता है।

इसी कारण नैतिक शिक्षा का उद्देश्य केवल नियमों और सिद्धांतों का ज्ञान देना नहीं, बल्कि व्यक्ति के भीतर अच्छी आदतों और सद्गुणपूर्ण प्रवृत्तियों का विकास करना होना चाहिए।

4.2 सद्गुण के प्रकार : अरस्तू ने सद्गुणों को मुख्यतः दो वर्गों में विभाजित किया है—

(क) बौद्धिक सद्गुण (Intellectual Virtues) : बौद्धिक सद्गुणों का विकास मुख्यतः शिक्षा, अध्ययन, अनुभव और चिंतन के माध्यम से होता है। इनका संबंध मनुष्य की विवेकशील और ज्ञानात्मक क्षमताओं से है। प्रमुख बौद्धिक सद्गुण निम्नलिखित हैं—

ज्ञान (Sophia)

विज्ञानात्मक ज्ञान (Episteme)

कला अथवा कौशल (Techne)

व्यावहारिक बुद्धि (Phronesis)

अंतर्ज्ञानात्मक बुद्धि (Nous)

इनमें व्यावहारिक बुद्धि नैतिक जीवन के लिए विशेष महत्त्व रखती है, क्योंकि इसके माध्यम से मनुष्य विभिन्न परिस्थितियों में उचित आचरण का निर्णय करता है।

(ख) नैतिक सद्गुण (Moral Virtues) : नैतिक सद्गुणों का संबंध व्यक्ति की इच्छाओं, भावनाओं, प्रवृत्तियों और आचरण से है। इनका विकास अभ्यास और आदतों के माध्यम से होता है। प्रमुख नैतिक सद्गुण हैं—

1. साहस (Courage)
2. संयम (Temperance)
3. उदारता (Generosity)
4. भव्यता (Magnificence)
5. महानुभावता (Magnanimity)
6. विनम्रता अथवा उचित आत्मसम्मान
7. सौम्यता (Mildness)
8. सत्यवादिता (Truthfulness)
9. मित्रता (Friendliness)
10. न्याय (Justice)

अरस्तू के अनुसार बौद्धिक और नैतिक सद्गुण एक-दूसरे के पूरक हैं। केवल ज्ञान से नैतिक जीवन संभव नहीं है और केवल अच्छी भावनाएँ भी पर्याप्त नहीं हैं। नैतिक उत्कृष्टता के लिए विवेक और उचित चरित्र दोनों आवश्यक हैं।

5. स्वर्णिम मध्य मार्ग का सिद्धांत (Doctrine of Golden Mean) : अरस्तू के सद्गुण नैतिकता सिद्धांत का सर्वाधिक प्रसिद्ध पक्ष स्वर्णिम मध्य मार्ग है। इस सिद्धांत के अनुसार नैतिक सद्गुण सामान्यतः दो अतियों के बीच स्थित उचित मध्य अवस्था है। ये दोनों अतियाँ एक ओर अधिकता और दूसरी ओर न्यूनता के रूप में होती हैं।

अरस्तू का मानना है कि मनुष्य की भावनाएँ और इच्छाएँ अपने आप में बुरी नहीं हैं। समस्या तब उत्पन्न होती है, जब वे अनुचित मात्रा में, अनुचित समय पर, अनुचित व्यक्ति के प्रति अथवा अनुचित उद्देश्य से व्यक्त होती हैं।

इसलिए नैतिकता का अर्थ भावनाओं का पूर्ण दमन नहीं, बल्कि उनका उचित नियमन है।

5.1 मध्य मार्ग का अर्थ : अरस्तू के अनुसार सद्गुण दो दोषों के बीच स्थित होता है।

उदाहरण के लिए—

साहस, कायरता और उतावलापन के बीच का उचित मध्य है।

संयम, असंयम और भावनात्मक कठोरता के बीच उचित स्थिति है।

उदारता, कंजूसी और अपव्यय के बीच की अवस्था है।

सौम्यता, अत्यधिक क्रोध और क्रोधहीनता के बीच उचित स्थिति है।

इसका अर्थ यह नहीं है कि सद्गुण सदैव गणितीय मध्य होता है। अरस्तू स्पष्ट करते हैं कि मध्य व्यक्ति और परिस्थिति के सापेक्ष निर्धारित होता है।

उदाहरण के लिए, एक खिलाड़ी के लिए उचित भोजन की मात्रा और एक वृद्ध व्यक्ति के लिए उचित भोजन की मात्रा समान नहीं हो सकती। इसी प्रकार किसी विशेष परिस्थिति में साहस का उचित प्रदर्शन व्यक्ति की क्षमता, परिस्थिति और खतरे की प्रकृति पर निर्भर करेगा।

5.2 मध्य मार्ग और व्यावहारिक विवेक : अरस्तू के अनुसार मध्य मार्ग का निर्धारण कोई यांत्रिक प्रक्रिया नहीं है। इसके लिए व्यावहारिक बुद्धि आवश्यक है।

किसी विशेष परिस्थिति में क्या उचित है, इसका निर्णय सामान्य नियमों से हमेशा नहीं किया जा सकता। व्यक्ति को परिस्थिति, उद्देश्य, परिणाम और संबंधित व्यक्तियों का विचार करना पड़ता है।

इस प्रकार मध्य मार्ग का सिद्धांत विवेकपूर्ण निर्णय की नैतिक आवश्यकता को स्वीकार करता है।

5.3 क्या प्रत्येक कर्म का मध्य होता है? : अरस्तू ने यह भी स्पष्ट किया है कि सभी कर्मों में मध्य मार्ग संभव नहीं है। कुछ कर्म अपनी प्रकृति से ही अनुचित हैं। उदाहरण के लिए चोरी, हत्या और व्यभिचार जैसे कर्मों को केवल उचित मात्रा में करने से सद्गुणपूर्ण नहीं बनाया जा सकता।

अतः स्वर्णिम मध्य मार्ग का सिद्धांत यह नहीं कहता कि प्रत्येक कार्य में किसी प्रकार का समझौता ही नैतिकता है। इसका उद्देश्य मानवीय भावनाओं और प्रवृत्तियों का विवेकपूर्ण संतुलन स्थापित करना है।

5.4 स्वर्णिम मध्य मार्ग की दार्शनिक महत्ता : यह सिद्धांत मनुष्य को अतिवाद से बचाता है। यह सिखाता है कि नैतिक जीवन में न तो इच्छाओं की असीमित स्वतंत्रता उचित है और न ही उनका पूर्ण दमन।

इस सिद्धांत की विशेषता यह है कि यह नैतिकता को वास्तविक मानवीय परिस्थितियों से जोड़ता है। व्यक्ति को केवल नियमों का अनुसरण करने के बजाय उचित निर्णय लेने की क्षमता विकसित करनी चाहिए।

6. व्यावहारिक बुद्धि (Phronesis) का महत्त्व : अरस्तू के नैतिक दर्शन में व्यावहारिक बुद्धि अत्यंत महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इसका अर्थ है ऐसी विवेकपूर्ण क्षमता, जिसके द्वारा व्यक्ति जीवन की व्यावहारिक परिस्थितियों में उचित और अनुचित का निर्णय कर सके।

सैद्धांतिक ज्ञान और व्यावहारिक ज्ञान में अंतर करते हुए अरस्तू बताते हैं कि किसी विषय के सामान्य सिद्धांतों को जानना और उन्हें वास्तविक जीवन में लागू करना दो अलग-अलग बातें हैं।

उदाहरण के लिए, व्यक्ति यह जान सकता है कि न्याय करना उचित है, लेकिन किसी जटिल सामाजिक परिस्थिति में न्यायपूर्ण निर्णय कैसे लिया जाए, इसके लिए व्यावहारिक बुद्धि की आवश्यकता होती है।

व्यावहारिक बुद्धि व्यक्ति को निम्नलिखित क्षमताएँ प्रदान करती है—

परिस्थिति का उचित मूल्यांकन करना।

विभिन्न विकल्पों के नैतिक पक्षों को समझना।

उचित साधनों का चयन करना।

भावनाओं और इच्छाओं को नियंत्रित करना।

दूरगामी मानवीय हितों को ध्यान में रखना।

सही समय पर उचित निर्णय लेना।

अरस्तू के अनुसार व्यावहारिक बुद्धि के बिना नैतिक सद्गुणों की पूर्णता संभव नहीं है। सद्गुण व्यक्ति को उचित लक्ष्य की ओर उन्मुख करते हैं, जबकि व्यावहारिक बुद्धि उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए उचित साधनों का निर्णय करती है।

इस प्रकार नैतिक जीवन में चरित्र और विवेक का समन्वय आवश्यक है।

7. नैतिक कर्म और स्वैच्छिकता का सिद्धांत : अरस्तू ने नैतिक उत्तरदायित्व के प्रश्न पर भी गंभीर विचार किया है। उनके अनुसार किसी व्यक्ति को उसके कर्मों के लिए तभी उत्तरदायी ठहराया जा सकता है, जब वह कर्म किसी अर्थ में उसकी इच्छा और निर्णय से संबंधित हो। उन्होंने स्वैच्छिक (Voluntary) और अनैच्छिक (Involuntary) कर्मों में अंतर किया है। स्वैच्छिक कर्म वे हैं, जिनका मूल कारण स्वयं व्यक्ति में स्थित होता है और व्यक्ति परिस्थितियों को समझते हुए उन्हें करता है।

इसके विपरीत, अनैच्छिक कर्म वे हैं, जो बाहरी दबाव, बाध्यता अथवा ऐसी अज्ञानता के कारण किए जाते हैं, जिनके लिए व्यक्ति को उचित रूप से दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

अरस्तू ने कुछ परिस्थितियों को मिश्रित कर्म (Mixed Actions) के रूप में भी स्वीकार किया है। उदाहरण के लिए, यदि किसी व्यक्ति को किसी बड़ी आपदा से बचने के लिए अपना धन छोड़ना पड़े, तो उसका निर्णय पूर्णतः स्वतंत्र भी नहीं है और पूर्णतः अनैच्छिक भी नहीं। यह विश्लेषण नैतिक उत्तरदायित्व की जटिलता को समझने में सहायक है।

7.1 इच्छाशक्ति और नैतिक दुर्बलता : अरस्तू ने अकर्मण्यता अथवा इच्छाशक्ति की दुर्बलता (Akrasia) का भी विश्लेषण किया है।

अकर्मण्यता की स्थिति तब उत्पन्न होती है, जब व्यक्ति यह जानता है कि कौन-सा कार्य उचित है, फिर भी अपनी तीव्र इच्छाओं अथवा भावनाओं के कारण उसके विपरीत आचरण करता है।

उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति जानता है कि अत्यधिक क्रोध करना अनुचित है, लेकिन क्रोध की अवस्था में वह अपने व्यवहार पर नियंत्रण नहीं रख पाता।

इस प्रकार अरस्तू ने सुकरात की उस धारणा से असहमति व्यक्त की कि केवल ज्ञान ही सद्गुण के लिए पर्याप्त है। उनके अनुसार नैतिक जीवन के लिए ज्ञान के साथ-साथ इच्छाओं का उचित प्रशिक्षण और चरित्र का विकास भी आवश्यक है।

8. न्याय की अवधारणा : अरस्तू ने न्याय को एक व्यापक नैतिक सद्गुण माना है। उनके अनुसार न्याय केवल किसी व्यक्ति का व्यक्तिगत गुण नहीं, बल्कि सामाजिक जीवन को व्यवस्थित करने वाला प्रमुख नैतिक सिद्धांत है।

उन्होंने न्याय के दो प्रमुख रूपों का विश्लेषण किया है—

8.1 सामान्य न्याय (General Justice) : सामान्य न्याय का संबंध कानूनों और सामाजिक नैतिकता के अनुरूप आचरण से है। इस अर्थ में न्याय व्यक्ति के अन्य सद्गुणों को भी समाहित करता है, क्योंकि न्यायपूर्ण व्यक्ति समाज के हित और दूसरों के अधिकारों का ध्यान रखता है।

8.2 विशेष न्याय (Particular Justice) : विशेष न्याय का संबंध व्यक्तियों के बीच संसाधनों, अधिकारों और दायित्वों के उचित वितरण से है। इसके दो प्रमुख रूप हैं—

वितरणात्मक न्याय (Distributive Justice): समाज में सम्मान, संपत्ति, पद और अन्य संसाधनों का वितरण उचित अनुपात के आधार पर होना चाहिए।

सुधारात्मक न्याय (Corrective Justice): जब किसी व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति के साथ अन्याय किया जाता है, तो उस असंतुलन को दूर करने के लिए न्यायपूर्ण सुधार आवश्यक है।

अरस्तू का न्याय संबंधी चिंतन सामाजिक जीवन की नैतिक संरचना को समझने में महत्त्वपूर्ण है। हालांकि उनके वितरणात्मक न्याय की अवधारणा समानता के आधुनिक सिद्धांतों से पूरी तरह मेल नहीं खाती।

9. मैत्री और नैतिक जीवन : अरस्तू की पुस्तक Nicomachean Ethics में मैत्री (Friendship) का विस्तृत विवेचन मिलता है। उनके अनुसार मैत्री सुखी जीवन का अनिवार्य अंग है। उन्होंने मैत्री के तीन प्रकार बताए हैं—

उपयोगिता पर आधारित मैत्री।

आनंद पर आधारित मैत्री।

सद्गुण पर आधारित मैत्री।

उपयोगिता की मैत्री में व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से किसी लाभ की अपेक्षा करता है। आनंद की मैत्री में मित्रता का आधार परस्पर प्रसन्नता और मनोरंजन होता है। जबकि सद्गुण पर आधारित मैत्री में दोनों व्यक्ति एक-दूसरे के चरित्र और नैतिक उत्कृष्टता के प्रति सम्मान रखते हैं।

अरस्तू के अनुसार सद्गुण पर आधारित मैत्री सर्वोच्च प्रकार की मैत्री है, क्योंकि इसमें व्यक्ति दूसरे के हित की कामना स्वयं उसके हित के लिए करता है।

यह अवधारणा स्पष्ट करती है कि अरस्तू का नैतिक दर्शन केवल व्यक्तिगत आत्मविकास तक सीमित नहीं है, बल्कि उसमें सामाजिक संबंधों और पारस्परिक सद्भाव का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

10. प्लेटो और अरस्तू की नैतिक विचारधारा का तुलनात्मक अध्ययन : प्लेटो और अरस्तू दोनों ही पाश्चात्य नैतिक दर्शन के महत्त्वपूर्ण विचारक हैं। दोनों ने मानव जीवन के सर्वोच्च उद्देश्य तथा सद्गुणों की प्रकृति पर विचार किया, किंतु उनकी दृष्टियों में कुछ महत्त्वपूर्ण अंतर हैं।

प्रथम, प्लेटो ने परम शुभ को एक स्वतंत्र एवं सर्वोच्च आदर्श के रूप में स्वीकार किया, जबकि अरस्तू ने शुभ का विश्लेषण मानवीय जीवन के वास्तविक उद्देश्यों के संदर्भ में किया।

द्वितीय, प्लेटो के दर्शन में नैतिकता का आधार आत्मा के विभिन्न भागों के बीच सामंजस्य है, जबकि अरस्तू के दर्शन में सद्गुणपूर्ण क्रियाशीलता और चरित्र-निर्माण को विशेष महत्त्व दिया गया है।

तृतीय, प्लेटो ने ज्ञान को सद्गुण का प्रमुख आधार माना, जबकि अरस्तू ने अभ्यास, आदत, इच्छा और व्यावहारिक विवेक को भी अनिवार्य माना।

चतुर्थ, प्लेटो का नैतिक चिंतन अपेक्षाकृत आदर्शवादी है, जबकि अरस्तू का नैतिक चिंतन अनुभव और व्यावहारिक जीवन से अधिक निकटता रखता है।

पंचम, अरस्तू ने नैतिकता में बाहरी परिस्थितियों और सामाजिक संबंधों की भूमिका को भी स्वीकार किया है। इस प्रकार उनका दृष्टिकोण मानवीय जीवन की वास्तविक जटिलताओं के अधिक निकट दिखाई देता है।

11. अरस्तू के सद्गुण नैतिकता सिद्धांत का आलोचनात्मक मूल्यांकन : अरस्तू का सद्गुण नैतिकता सिद्धांत नैतिक दर्शन की एक अत्यंत प्रभावशाली विचारधारा है। फिर भी किसी भी दार्शनिक सिद्धांत की वास्तविक महत्ता उसके सकारात्मक पक्षों के साथ-साथ उसकी सीमाओं और अंतर्विरोधों के विश्लेषण से निर्धारित होती है।

इस दृष्टि से अरस्तू के सिद्धांत का आलोचनात्मक अध्ययन निम्नलिखित आधारों पर किया जा सकता है।

11.1 सिद्धांत की प्रमुख विशेषताएँ :

(क) चरित्र-निर्माण पर बल : अरस्तू के सिद्धांत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने नैतिकता को व्यक्ति के चरित्र से जोड़ा। उनके अनुसार नैतिकता केवल कुछ नियमों का पालन करने का नाम नहीं है, बल्कि एक अच्छे मनुष्य का निर्माण करना है।

यह दृष्टिकोण आधुनिक नैतिक जीवन में भी महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि केवल कानून और दंड व्यवस्था से नैतिक समाज की स्थापना संभव नहीं है। इसके लिए व्यक्तियों में ईमानदारी, न्यायप्रियता, सहिष्णुता और उत्तरदायित्व जैसे गुणों का विकास आवश्यक है।

(ख) नैतिकता का व्यावहारिक स्वरूप : अरस्तू का दर्शन अमूर्त आदर्शों तक सीमित नहीं रहता। वह दैनिक जीवन में व्यक्ति के व्यवहार, निर्णय और सामाजिक संबंधों को नैतिक चिंतन का विषय बनाता है।

स्वर्णिम मध्य मार्ग का सिद्धांत इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि वह मनुष्य को परिस्थितियों के अनुसार विवेकपूर्ण आचरण करने की प्रेरणा देता है।

(ग) भावनाओं का सकारात्मक मूल्यांकन : अरस्तू ने भावनाओं को नैतिकता का विरोधी नहीं माना। उनके अनुसार भय, क्रोध, आनंद और इच्छा मानवीय जीवन के स्वाभाविक पक्ष हैं। नैतिकता का उद्देश्य इनका पूर्ण निषेध नहीं, बल्कि इनका उचित नियमन है।

यह दृष्टिकोण मानवीय मनोविज्ञान के अधिक निकट है।

(घ) शिक्षा और अभ्यास का महत्त्व : अरस्तू ने यह स्पष्ट किया कि सद्गुण जन्मजात नहीं होते। इनका विकास अभ्यास और नैतिक प्रशिक्षण के माध्यम से होता है।

यह विचार शिक्षा-दर्शन के लिए अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। शिक्षा का उद्देश्य केवल सूचना और ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि नैतिक व्यक्तित्व का विकास करना भी होना चाहिए।

(ङ) सामाजिक जीवन का महत्त्व : अरस्तू ने मनुष्य को स्वभावतः सामाजिक एवं राजनीतिक प्राणी माना। उनके अनुसार व्यक्ति का नैतिक विकास समाज से अलग रहकर संभव नहीं है।

न्याय, मैत्री और सामाजिक सहभागिता को उन्होंने अच्छे जीवन का आवश्यक आधार माना।

11.2 सिद्धांत की प्रमुख सीमाएँ :

(क) यूडेमोनिया की अस्पष्टता : अरस्तू के सिद्धांत की एक प्रमुख आलोचना यह है कि यूडेमोनिया की अवधारणा पूरी तरह स्पष्ट और एकार्थक नहीं है।

एक ओर वे यूडेमोनिया को सद्गुणपूर्ण जीवन की क्रियाशीलता मानते हैं, दूसरी ओर बौद्धिक चिंतन को सर्वोच्च मानवीय गतिविधि बताते हैं। इस कारण यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या सर्वोच्च सुख मुख्यतः नैतिक-सामाजिक गतिविधियों में निहित है या दार्शनिक चिंतन में?

यद्यपि अरस्तू इन दोनों के बीच संबंध स्थापित करने का प्रयास करते हैं, फिर भी उनके सिद्धांत में इस विषय पर व्याख्यात्मक कठिनाई बनी रहती है।

(ख) मध्य मार्ग की अनिश्चितता : स्वर्णिम मध्य मार्ग का सिद्धांत आकर्षक है, लेकिन इसकी व्यावहारिक सीमा यह है कि उचित मध्य का निर्धारण करना हमेशा सरल नहीं होता।

उदाहरण के लिए, किसी सामाजिक अन्याय के विरुद्ध विरोध करना कितना उचित है? अत्यधिक विरोध को उतावलापन कहा जा सकता है और अत्यधिक मौन को कायरता। लेकिन इन दोनों के बीच उचित स्थिति का निर्णय कौन करेगा?

इसका उत्तर अरस्तू व्यावहारिक बुद्धि में खोजते हैं। फिर भी समस्या यह है कि व्यावहारिक बुद्धि की पहचान और उसके वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन का कोई सरल सार्वभौमिक मानदंड उपलब्ध नहीं है।

इस प्रकार मध्य मार्ग कभी-कभी नैतिक निर्णय को व्यक्ति की परिस्थिति और व्याख्या पर अत्यधिक निर्भर बना सकता है।

(ग) सामाजिक एवं राजनीतिक सीमाएँ : अरस्तू का नैतिक दर्शन प्राचीन यूनानी नगर-राज्य की सामाजिक और राजनीतिक संरचना से प्रभावित था। उनके समाज में दास प्रथा विद्यमान थी तथा महिलाओं और अनेक श्रमिक वर्गों को समान राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे।

अरस्तू ने अपनी राजनीतिक विचारधारा में दासता के प्राकृतिक औचित्य का समर्थन भी किया। आधुनिक मानवाधिकार, स्वतंत्रता और समानता के सिद्धांतों के आधार पर इस दृष्टिकोण की गंभीर आलोचना की जाती है।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक समस्या सामने आती है—यदि नैतिकता का उद्देश्य मनुष्य की उत्कृष्टता और पूर्ण विकास है, तो क्या यह अवसर समाज के सभी व्यक्तियों के लिए समान रूप से उपलब्ध नहीं होना चाहिए?

अरस्तू का ऐतिहासिक सामाजिक दृष्टिकोण इस आधुनिक प्रश्न का संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाता।

(घ) स्त्रियों के संबंध में सीमित दृष्टिकोण : अरस्तू के सामाजिक और राजनीतिक विचारों में स्त्रियों को पुरुषों के समान सार्वजनिक एवं राजनीतिक भूमिका प्रदान नहीं की गई है। उनका यह दृष्टिकोण आधुनिक लैंगिक समानता के सिद्धांतों से असंगत है।

आधुनिक नैतिक दर्शन के अनुसार नैतिक क्षमता, विवेक और मानवीय गरिमा किसी एक लिंग तक सीमित नहीं हैं। इसलिए अरस्तू के सामाजिक विचारों की आलोचनात्मक पुनर्व्याख्या आवश्यक है।

(ङ) बाहरी परिस्थितियों पर निर्भरता : अरस्तू ने सुखी जीवन के लिए कुछ बाहरी साधनों को आवश्यक माना है। स्वास्थ्य, संपत्ति, सामाजिक प्रतिष्ठा और मित्रता जैसे तत्त्व यूडेमोनिया को प्रभावित करते हैं।

इससे एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि कोई व्यक्ति अत्यंत सद्गुणी है, लेकिन गरीबी, बीमारी, अन्याय अथवा प्रतिकूल सामाजिक परिस्थितियों से घिरा हुआ है, तो क्या वह वास्तविक सुख प्राप्त कर सकता है?

अरस्तू स्वीकार करते हैं कि बाहरी दुर्भाग्य सुखी जीवन को प्रभावित कर सकता है। किंतु इससे उनके सिद्धांत में एक सीमा दिखाई देती है, क्योंकि नैतिक उत्कृष्टता और सुख के बीच संबंध पूरी तरह आत्मनिर्भर नहीं रह जाता।

(च) सार्वभौमिक नैतिक नियमों का अभाव : अरस्तू का सिद्धांत मुख्यतः चरित्र और व्यावहारिक निर्णय पर आधारित है। इसलिए इसमें ऐसे सार्वभौमिक नैतिक नियमों की स्पष्ट व्यवस्था नहीं मिलती, जो प्रत्येक परिस्थिति में समान रूप से लागू हो सकें।

उदाहरण के लिए, किसी संकट की स्थिति में सत्य बोलना उचित है या किसी निर्दोष व्यक्ति की रक्षा के लिए सत्य को छिपाना उचित होगा? ऐसी परिस्थितियों में सद्गुण नैतिकता व्यक्ति के विवेक पर निर्भर करती है।

इस कारण कुछ आलोचकों के अनुसार यह सिद्धांत जटिल नैतिक विवादों में निश्चित निर्णय देने के लिए पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं है।

(छ) नैतिक निर्णय में सांस्कृतिक भिन्नता की समस्या : अरस्तू का नैतिक दर्शन सद्गुणों को मानवीय उत्कृष्टता का आधार मानता है, लेकिन विभिन्न समाजों में उत्कृष्टता, साहस, संयम और उचित व्यवहार की धारणाएँ अलग-अलग हो सकती हैं।

उदाहरण के लिए, एक संस्कृति में आत्मसंयम को सर्वोच्च गुण माना जा सकता है, जबकि दूसरी संस्कृति में व्यक्तिगत स्वतंत्रता और आत्म-अभिव्यक्ति को अधिक महत्त्व दिया जा सकता है।

इसलिए यह प्रश्न उठता है कि क्या अरस्तू के सद्गुणों की अवधारणा सार्वभौमिक है या वह विशेष सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से प्रभावित है?

(ज) न्याय और समानता की आधुनिक अवधारणा से अंतर : अरस्तू का वितरणात्मक न्याय समानुपातिक वितरण पर आधारित है। किंतु आधुनिक लोकतांत्रिक समाज में समान नागरिक अधिकार, अवसर की समानता और सामाजिक न्याय को विशेष महत्त्व दिया जाता है।

अरस्तू की अवधारणा में यह स्पष्ट नहीं है कि ऐतिहासिक रूप से वंचित वर्गों को न्यायपूर्ण अवसर प्रदान करने के लिए किस प्रकार की संस्थागत व्यवस्था आवश्यक है।

अतः आधुनिक सामाजिक न्याय की समस्याओं के समाधान के लिए उनके विचारों का विस्तार आवश्यक है।

12. अरस्तू की सद्गुण नैतिकता और आधुनिक नैतिक दर्शन : आधुनिक नैतिक दर्शन में अरस्तू के सद्गुण नैतिकता सिद्धांत का पुनर्मूल्यांकन हुआ है। विशेष रूप से बीसवीं शताब्दी में नैतिक दर्शन के अनेक विचारकों ने चरित्र और सद्गुणों के महत्त्व को पुनः स्थापित करने का प्रयास किया।

आधुनिक सद्गुण नैतिकता के विकास में एलिजाबेथ एन्सकॉम्ब (Elizabeth Anscombe), फिलिपा फुट (Philippa Foot), अलास्डेयर मैकइंटायर (Alasdair MacIntyre) और रोजलिंड हर्स्टहाउस (Rosalind Hursthouse) जैसे विचारकों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

एन्सकॉम्ब ने आधुनिक नैतिक दर्शन की आलोचना करते हुए सद्गुण और मानवीय जीवन के उद्देश्य पर पुनर्विचार की आवश्यकता बताई। मैकइंटायर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक After Virtue में आधुनिक समाज की नैतिक विखंडनशीलता की चर्चा करते हुए अरस्तू की सद्गुण नैतिकता को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया।

मैकइंटायर के अनुसार नैतिकता को समझने के लिए मनुष्य के जीवन की समग्र कथा, सामाजिक परंपराओं और सामुदायिक जीवन को ध्यान में रखना आवश्यक है।

फिलिपा फुट ने भी सद्गुणों की अवधारणा को मानवीय जीवन की आवश्यकताओं और व्यावहारिक परिस्थितियों से जोड़कर समझाया।

इन विचारकों के प्रयासों से स्पष्ट होता है कि अरस्तू की सद्गुण नैतिकता केवल प्राचीन यूनानी दर्शन का ऐतिहासिक सिद्धांत नहीं है, बल्कि आधुनिक नैतिक समस्याओं के विश्लेषण के लिए भी उपयोगी दार्शनिक दृष्टिकोण है।

13. समकालीन समाज में अरस्तू के सद्गुण नैतिकता सिद्धांत की प्रासंगिकता : वर्तमान युग विज्ञान, तकनीक, वैश्वीकरण और आर्थिक विकास का युग है। इसके बावजूद मानवीय जीवन अनेक नैतिक संकटों से घिरा हुआ है। भ्रष्टाचार, हिंसा, असहिष्णुता, उपभोक्तावाद, सामाजिक विषमता, पर्यावरणीय संकट और मानवीय संबंधों में गिरावट जैसी समस्याएँ आज के समाज के सामने गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती हैं।

इन परिस्थितियों में अरस्तू का सद्गुण नैतिकता सिद्धांत महत्त्वपूर्ण मार्गदर्शन प्रदान कर सकता है।

13.1 शिक्षा के क्षेत्र में प्रासंगिकता : आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य केवल रोजगार प्राप्त करना या व्यावसायिक दक्षता विकसित करना नहीं होना चाहिए। शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य जिम्मेदार, संवेदनशील और विवेकशील नागरिकों का निर्माण करना भी है।

अरस्तू के अनुसार सद्गुण अभ्यास और आदत से विकसित होते हैं। इसलिए शिक्षा व्यवस्था में ईमानदारी, अनुशासन, सहिष्णुता, सहयोग, न्यायप्रियता और सामाजिक उत्तरदायित्व जैसे मूल्यों को स्थान देना आवश्यक है।

शिक्षक का कार्य केवल विषय-वस्तु का ज्ञान प्रदान करना नहीं, बल्कि विद्यार्थियों के नैतिक व्यक्तित्व के विकास में योगदान देना भी है।

13.2 राजनीतिक जीवन में प्रासंगिकता : वर्तमान लोकतांत्रिक व्यवस्था में राजनीतिक नेतृत्व के लिए ईमानदारी, न्यायप्रियता, विवेक, उत्तरदायित्व और लोककल्याण की भावना आवश्यक है।

अरस्तू का सद्गुण नैतिकता सिद्धांत इस बात पर बल देता है कि अच्छे राजनीतिक संस्थानों के साथ अच्छे चरित्र वाले नागरिक और नेतृत्व भी आवश्यक हैं।

केवल कानून बनाकर भ्रष्टाचार और अन्याय को समाप्त नहीं किया जा सकता। इसके लिए सार्वजनिक जीवन में नैतिक मूल्यों का विकास आवश्यक है।

13.3 सामाजिक संबंधों में प्रासंगिकता : आज व्यक्तिगत स्वार्थ, प्रतिस्पर्धा और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों के कारण मानवीय संबंधों में तनाव बढ़ रहा है।

अरस्तू की मैत्री संबंधी अवधारणा हमें बताती है कि सच्चे संबंध केवल उपयोगिता और आनंद पर आधारित नहीं होने चाहिए, बल्कि उनमें पारस्परिक सम्मान, विश्वास और नैतिक सद्भाव होना चाहिए।

इस प्रकार उनका मैत्री दर्शन सामाजिक एकता और मानवीय संबंधों को मजबूत बनाने में सहायक हो सकता है।

13.4 पर्यावरणीय नैतिकता में प्रासंगिकता : वर्तमान समय में पर्यावरण प्रदूषण, जलवायु परिवर्तन और प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन गंभीर समस्याएँ हैं।

यद्यपि अरस्तू ने आधुनिक अर्थों में पर्यावरणीय नैतिकता का प्रतिपादन नहीं किया, फिर भी उनके संयम, विवेक और उचित उपभोग के सिद्धांतों को पर्यावरणीय संदर्भ में विकसित किया जा सकता है।

स्वर्णिम मध्य मार्ग का सिद्धांत मनुष्य को अनियंत्रित उपभोग और प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन से बचने की प्रेरणा देता है। पर्यावरण के प्रति जिम्मेदार व्यवहार, संसाधनों का विवेकपूर्ण उपयोग और भावी पीढ़ियों के हितों का ध्यान रखना आधुनिक सद्गुण नैतिकता के महत्त्वपूर्ण आयाम हो सकते हैं।

13.5 तकनीकी एवं डिजिटल युग में प्रासंगिकता :डिजिटल तकनीक और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के विकास ने अनेक नए नैतिक प्रश्न उत्पन्न किए हैं। व्यक्तिगत गोपनीयता, डेटा सुरक्षा, डिजिटल हिंसा, गलत सूचना, तकनीकी निर्भरता और कृत्रिम बुद्धिमत्ता के उत्तरदायी उपयोग जैसे प्रश्न अत्यंत महत्त्वपूर्ण हो गए हैं।

अरस्तू की व्यावहारिक बुद्धि की अवधारणा इन परिस्थितियों में उपयोगी है। तकनीक का उपयोग केवल उसकी क्षमता के आधार पर नहीं, बल्कि उसके नैतिक परिणामों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

डिजिटल माध्यमों पर सत्यनिष्ठा, संयम, उत्तरदायित्व और दूसरों की गरिमा का सम्मान करना आधुनिक सद्गुण नैतिकता की आवश्यक अभिव्यक्तियाँ हैं।

13.6 व्यक्तिगत जीवन में प्रासंगिकता : आधुनिक जीवन में व्यक्ति अनेक प्रकार के तनाव, प्रतिस्पर्धा और निर्णय संबंधी समस्याओं से गुजरता है। अरस्तू का दर्शन व्यक्ति को आत्मनिरीक्षण, आत्मसंयम, विवेकपूर्ण निर्णय और संतुलित जीवन की प्रेरणा देता है।

इस दृष्टि से सद्गुण नैतिकता केवल सैद्धांतिक अध्ययन का विषय नहीं, बल्कि व्यावहारिक जीवन को बेहतर बनाने का माध्यम भी है।

14. भारतीय नैतिक दर्शन के संदर्भ में अरस्तू की सद्गुण नैतिकता : अरस्तू के सद्गुण नैतिकता सिद्धांत का तुलनात्मक अध्ययन भारतीय नैतिक दर्शन के संदर्भ में भी किया जा सकता है। भारतीय दर्शन की विभिन्न परंपराओं में नैतिक आचरण, आत्मसंयम, विवेक, करुणा और आत्मविकास को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

विशेष रूप से बौद्ध दर्शन और भगवद्गीता में प्रस्तुत नैतिक विचार अरस्तू के चिंतन के साथ कुछ तुलनात्मक समानताएँ प्रस्तुत करते हैं।

14.1 अरस्तू और बौद्ध नैतिक दर्शन : बौद्ध दर्शन में सम्यक दृष्टि, सम्यक संकल्प, सम्यक वाक्, सम्यक कर्मान्त, सम्यक आजीविका, सम्यक व्यायाम, सम्यक स्मृति और सम्यक समाधि को अष्टांगिक मार्ग के अंग के रूप में प्रस्तुत किया गया है।

बौद्ध दर्शन का उद्देश्य दुःख की समस्या का समाधान और निर्वाण की प्राप्ति है। इसके लिए व्यक्ति को तृष्णा, अविद्या और क्लेशों से मुक्त होकर नैतिक एवं मानसिक परिष्कार की दिशा में आगे बढ़ना होता है।

अरस्तू की तरह बौद्ध दर्शन भी नैतिक जीवन में अभ्यास और आत्मानुशासन को महत्त्व देता है। दोनों ही परंपराएँ मनुष्य के आचरण और आंतरिक विकास के संबंध को स्वीकार करती हैं।

हालाँकि दोनों के अंतिम उद्देश्यों में महत्त्वपूर्ण अंतर है। अरस्तू का लक्ष्य यूडेमोनिया अर्थात् उत्कृष्ट मानवीय जीवन है, जबकि बौद्ध दर्शन में निर्वाण की प्राप्ति केंद्रीय है। इसी प्रकार अरस्तू आत्मा की क्रियाशीलता की चर्चा करते हैं, जबकि बौद्ध दर्शन अनात्मवाद का प्रतिपादन करता है।

14.2 अरस्तू और भगवद्गीता : भगवद्गीता में निष्काम कर्म, समत्व, आत्मसंयम, स्वधर्म और बुद्धियोग को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। गीता का निष्काम कर्म सिद्धांत व्यक्ति को कर्म के फल के प्रति अत्यधिक आसक्ति से मुक्त होकर कर्तव्य का पालन करने की प्रेरणा देता है।

अरस्तू की व्यावहारिक बुद्धि की अवधारणा और गीता के बुद्धियोग में विवेकपूर्ण निर्णय की दृष्टि से कुछ तुलनात्मक समानताएँ देखी जा सकती हैं।

इसी प्रकार अरस्तू का संयम और गीता का इन्द्रियनिग्रह भी आत्मानुशासन की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।

हालाँकि अरस्तू की नैतिकता मुख्यतः यूडेमोनिया और सद्गुणपूर्ण क्रियाशीलता पर आधारित है, जबकि गीता का नैतिक चिंतन कर्म, धर्म और आध्यात्मिक मुक्ति से संबंधित व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विभिन्न दार्शनिक परंपराओं में नैतिक जीवन के विकास के लिए आत्मसंयम, विवेक और आचरण की उत्कृष्टता को विशेष महत्त्व प्राप्त है।

15. सद्गुण नैतिकता और नैतिक व्यक्तित्व का निर्माण : अरस्तू के सिद्धांत का एक महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष यह है कि नैतिकता को व्यक्ति के संपूर्ण व्यक्तित्व से अलग करके नहीं समझा जा सकता।

व्यक्ति का चरित्र उसकी इच्छाओं, भावनाओं, निर्णयों, आदतों और सामाजिक व्यवहार के माध्यम से निर्मित होता है। इसलिए नैतिक विकास एक निरंतर प्रक्रिया है।

किसी व्यक्ति को केवल इसलिए सद्गुणी नहीं कहा जा सकता कि वह नैतिक सिद्धांतों का ज्ञान रखता है। वास्तविक सद्गुण तब प्रकट होता है, जब वह उचित परिस्थितियों में स्वाभाविक रूप से उचित आचरण करने में सक्षम हो।

उदाहरण के लिए, ईमानदारी केवल यह जानने का नाम नहीं है कि झूठ बोलना अनुचित है। ईमानदारी तब चरित्र का गुण बनती है, जब व्यक्ति व्यक्तिगत लाभ अथवा दबाव की स्थिति में भी सत्य और नैतिकता का पालन करता है।

इसी प्रकार न्यायप्रियता केवल न्याय के पक्ष में विचार व्यक्त करना नहीं है, बल्कि वास्तविक जीवन में दूसरों के अधिकारों और हितों का सम्मान करना है।

इस प्रकार अरस्तू का सिद्धांत नैतिकता को ज्ञान से आगे बढ़ाकर जीवन की वास्तविक गतिविधियों और चरित्र के स्थायी गुणों से जोड़ता है।

16. समग्र दार्शनिक विवेचन : अरस्तू की सद्गुण नैतिकता का समग्र अध्ययन करने पर स्पष्ट होता है कि उनका दर्शन नैतिकता के विभिन्न पक्षों को एक व्यापक दार्शनिक संरचना में समाहित करता है।

यूडेमोनिया इस संरचना का अंतिम उद्देश्य है। सद्गुण इस उद्देश्य की प्राप्ति का आधार है। आदत और अभ्यास सद्गुणों के विकास के साधन हैं। स्वर्णिम मध्य मार्ग नैतिक आचरण की दिशा निर्धारित करता है और व्यावहारिक बुद्धि व्यक्ति को विशेष परिस्थितियों में उचित निर्णय लेने में सक्षम बनाती है। इस प्रकार इन सभी अवधारणाओं के बीच गहरा अंतर्संबंध है।

अरस्तू के अनुसार नैतिक उत्कृष्टता किसी एक अच्छे कर्म का परिणाम नहीं है, बल्कि यह संपूर्ण जीवन में निरंतर किए गए विवेकपूर्ण और सद्गुणपूर्ण कर्मों का प्रतिफल है।

उनकी दृष्टि में मनुष्य का वास्तविक विकास तभी संभव है, जब उसकी बुद्धि, इच्छा, भावना और व्यवहार के बीच उचित सामंजस्य स्थापित हो।

फिर भी इस सिद्धांत की ऐतिहासिक और सैद्धांतिक सीमाओं की उपेक्षा नहीं की जा सकती। विशेष रूप से दासता के समर्थन, स्त्रियों के प्रति सीमित दृष्टिकोण, सामाजिक असमानताओं और यूडेमोनिया की व्याख्यात्मक समस्याओं के कारण इसकी आलोचनात्मक पुनर्व्याख्या आवश्यक है।

आधुनिक संदर्भ में अरस्तू के सिद्धांत का महत्त्व इस बात में है कि इसके मूल नैतिक तत्त्वों को समानता, स्वतंत्रता, मानवाधिकार और सामाजिक न्याय जैसे आधुनिक मूल्यों के साथ समन्वित करके विकसित किया जा सकता है।

17. निष्कर्ष : अरस्तू का सद्गुण नैतिकता सिद्धांत पाश्चात्य नैतिक दर्शन की एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण और प्रभावशाली विचारधारा है। इस सिद्धांत की मौलिकता इस बात में निहित है कि यह नैतिकता को केवल बाहरी नियमों, कर्तव्यों अथवा कर्मों के परिणामों तक सीमित नहीं रखता, बल्कि मनुष्य के चरित्र, विवेक, भावनाओं, इच्छाओं और जीवन के सर्वोच्च उद्देश्य के साथ जोड़ता है।

अरस्तू के अनुसार मनुष्य का परम उद्देश्य यूडेमोनिया है, जिसकी प्राप्ति सद्गुण के अनुरूप विवेकपूर्ण क्रियाशीलता से होती है। इस दृष्टि से सुख केवल क्षणिक आनंद या भौतिक उपलब्धि नहीं, बल्कि संपूर्ण जीवन की नैतिक एवं बौद्धिक उत्कृष्टता है।

स्वर्णिम मध्य मार्ग का सिद्धांत मनुष्य को भावनात्मक अतियों से बचाकर विवेकपूर्ण संतुलन की ओर प्रेरित करता है। व्यावहारिक बुद्धि की अवधारणा नैतिक निर्णय की जटिलता को स्वीकार करते हुए परिस्थितियों के अनुरूप उचित आचरण करने की क्षमता पर बल देती है। इसी प्रकार अभ्यास, आदत और नैतिक प्रशिक्षण के माध्यम से चरित्र-निर्माण की उनकी अवधारणा शिक्षा तथा सामाजिक जीवन के लिए विशेष महत्त्व रखती है।

हालाँकि अरस्तू का सिद्धांत अपनी कुछ सीमाओं से मुक्त नहीं है। उनकी यूडेमोनिया की अवधारणा में व्याख्यात्मक कठिनाइयाँ हैं, मध्य मार्ग का निर्धारण हमेशा सरल नहीं है और उनकी सामाजिक-राजनीतिक मान्यताएँ आधुनिक समानता तथा मानवाधिकार के सिद्धांतों से मेल नहीं खातीं। फिर भी इन सीमाओं के कारण उनके संपूर्ण नैतिक दर्शन की महत्ता समाप्त नहीं होती।

वास्तव में अरस्तू की सबसे बड़ी दार्शनिक उपलब्धि यह है कि उन्होंने नैतिकता को मनुष्य के अस्तित्व और जीवन की उत्कृष्टता का अभिन्न अंग बनाया। उन्होंने यह स्थापित किया कि अच्छा जीवन केवल सफलता, संपत्ति, प्रतिष्ठा अथवा व्यक्तिगत आनंद से निर्मित नहीं होता, बल्कि उसके लिए अच्छे चरित्र, विवेकपूर्ण निर्णय, आत्मसंयम, न्यायप्रियता और सामाजिक उत्तरदायित्व की आवश्यकता होती है।

समकालीन समाज में जहाँ भौतिक उपलब्धियों को जीवन की सफलता का प्रमुख मानदंड माना जाने लगा है, वहाँ अरस्तू का दर्शन मनुष्य को अपने जीवन के वास्तविक उद्देश्य पर पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करता है। उनका सद्गुण नैतिकता सिद्धांत यह संदेश देता है कि एक बेहतर समाज की स्थापना के लिए केवल बेहतर संस्थाओं और कानूनों की आवश्यकता नहीं है, बल्कि बेहतर चरित्र वाले व्यक्तियों का निर्माण भी अनिवार्य है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि अरस्तू का सद्गुण नैतिकता सिद्धांत केवल प्राचीन यूनानी दर्शन की एक ऐतिहासिक अवधारणा नहीं है, बल्कि यह आज भी मानवीय जीवन की नैतिक समस्याओं, चरित्र-निर्माण, शिक्षा, सामाजिक न्याय और विवेकपूर्ण जीवन के अध्ययन के लिए एक महत्त्वपूर्ण दार्शनिक आधार प्रदान करता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची (References / Bibliography) :

प्राथमिक स्रोत :

- Aristotle. Nicomachean Ethics. Translated by Terence Irwin. Indianapolis: Hackett Publishing Company, 1999.
- Aristotle. Nicomachean Ethics. Translated by W. D. Ross, revised by J. O. Urmson. Oxford: Oxford University Press.
- Aristotle. Politics. Translated by C. D. C. Reeve. Indianapolis: Hackett Publishing Company, 1998.
- Aristotle. Eudemian Ethics. Translated by Anthony Kenny. Oxford: Oxford University Press, 2011.

द्वितीयक स्रोत :

- Anscombe, G. E. M. “Modern Moral Philosophy.” Philosophy, Vol. 33, No. 124, 1958, pp. 1–19.
- MacIntyre, Alasdair. After Virtue: A Study in Moral Theory. Notre Dame: University of Notre Dame Press, 1981.
- Hursthouse, Rosalind. On Virtue Ethics. Oxford: Oxford University Press, 1999.
- Foot, Philippa. Virtues and Vices and Other Essays in Moral Philosophy. Oxford: Oxford University Press, 1978.
- Kraut, Richard. Aristotle on the Human Good. Princeton: Princeton University Press, 1989.
- Broadie, Sarah. Ethics with Aristotle. Oxford: Oxford University Press, 1991.
- Reeve, C. D. C. Practices of Reason: Aristotle's Nicomachean Ethics. Oxford: Oxford University Press, 1992.

•